P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-II * Issue-XI*July-2015

सोबती की नारी का सफरनामा : पाशो से आरण्या तक

मनिन्द्रजीत कौर
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
सूरतगढ़, श्री गंगानगर

सारांश

समकालीन कहानी लेखिकाओं में कृष्णा सोबती अपने अपूर्व व्यक्तित्व और साहित्यिक उपलब्धियों से वि"ाष्ट स्थान की हकदार हैं। अपनी 'बोल्डनेस' से एक खास पहचान बनाने में वे सफल हुई हैं। जीवन की सच्चाइया का यथार्थ रूप में बखान का निडरता से समाज का सामना करन वाली लेखिकाओं में उनका नाम पहले आता है। हर रचनाकार की संवेदना को प्रभावित करने में आस–पास के वातावरण, स्थितियों, घटनाओं की अहम् भूमिका होती है। कृष्णा सोबती की रचनाओं में वि"ोषकर उपन्यासों में उभरकर आये नारी विषयक विचारों को स्पष्ट किया गया है।

इसी आधुनिकता को कृष्णा सोबती ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी मन को समझते हुए उसे नये तरीके से प्रस्तुत किया है। सोबती की नारी अगर एक तरफ अल्हड़, वाचाल और खिलदंडेपन से भरपूर है ता दूसरी तरफ उसके मन में सहृदयता है और मनुष्य मात्र के प्रति सम्मानजनक स्थान भी है। मनुष्य का जेंडर डिवीजन उनके सामने बेमानी है। वह न तो अपने आपको हीन मानती है और ना ही दायित्व का बोझ अपने सिर पर उठाये घूमती है। वह धर्म और नीति के जड़, रूढ़ और वर्जनायुक्त आवरणों की कैद से मुक्त होकर सहज रूप से जीवन का साक्षात्कार करना चाहती है, जिससे परम्परानुसार चल रहे मूल्य टूट रहे हैं और नये मूल्य बन रहे हैं। जाहिर है आज स्त्री की सत्ता, अस्मिता और महत्ता को परम्परा से चले आ रहे परस्पर विरोधी विशेषणों में बांधकर दरकिनार नहीं किया जा सकता। आज उसे न किसी की बैसाखी चाहिए और ना ही सहानुभूति। कृष्णा सोबती की नायिकाओं में अन्य नारी पात्रों से जो सबसे अलग दिखाई पड़ती है वह है उनकी सोच। उसकी देह, सोच और संस्कार किसी भी परम्परागत तौर तरीकों से अलग हैं, जिसके आधार पर वह अपनी दिशा निर्धारित करती है।

मुख्य शब्द : सोबती की नारी, पाशो।

प्रस्तावना

स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती का एक ऐसा स्थान है जो उन्हें अन्य महिला कथाकारों से अलग रखता है। उनके लेखन में आत्मपीड़ा, विद्रोहात्मकता, सामाजिकता एवं एक अलग आंचलिकता के द"र्न होते ह। उनकी कृतियों में जहां एक तरफ पंजाबी जीवन के क्षेत्रिय रंगों को उभारा है तो वहीं दूसरी तरफ दबी, कुचली, शोषित, पीड़ित, विद्रोहिणी एवं स्वछन्द नारियों को भी वाणी दी है। वे परम्परागत बनी आ रही रूढ़ियों को तोड़ना चाहती हैं, लकीर की फकीर होकर जीना उन्हें शायद पसन्द नहीं है इसीलिये वो कहती हैं– ''जो बातें पुरानी परम्परा को उघाड़ना चाहती ह, वह साधारण कामों से अलग होता है। इस संदर्भ में मुझे मेरी रचनाऐं बोल्ड नहीं लगती हैं। हाँ, उनको स्वीकृति मिलने में थोड़ा समय लगता है। लेकिन मुझे लगता है एक खास ढ़ंग से धीरे–धीरे पाठक उससे सहमत होता गया।''[1] वे कम लिखती है पर वि"ाष्ट लिखती है। गृहस्थ जीवन से मुक्त होने के कारण उन्हाने अपना पूरा समय साहित्य को दिया है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों के रूप में 1. डार से बिछुड़ी, 2. मित्रों मरजानी, 3. सूरजमुखी अंधेरे के, 4. जिन्दगीनामा. 5. दिलोदानि"ा, 6. समय सरगम न अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। समकालीन कहानी लेखिकाओं में कृष्णा सोबती अपने अपूर्व व्यक्तित्व और साहित्यिक उपलब्धियों से वि"ाष्ट स्थान की हकदार है। अपनी 'बोल्डनेस' से एक खास पहचान बनाने में वे सफल हुई हैं। जीवन की सच्चाइयों का यथार्थ रूप में बखान कर निडरता से समाज का सामना करने वाली लेखिकाओं में उनका नाम पहले आता है। हर रचनाकार की संवेदना को प्रभावित करने में आस पास के वातावरण, स्थितियों,

घटनाओं की अहम भूमिका होती है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में उभरकर आये नारी विषयक विचारों को स्पष्ट किया गया है।

डार से बिछुड़ी (पाशो)

यह कृष्णा सोबती की प्रथम प्रकाि"ात औपन्यासिक रचना है। यह उपन्यास पंजाब प्रदे"ा के आंचलिक जीवन पर आधारित है। उपन्यास की प्रमुख पात्र पा"ाो एक बार डार से बिछुड़ गई तो सारे कंटीले रास्तों, पगड़ंडियों से उसे गुजरना पडा। '' 'डार से बिछुड़ी' एक बिम्ब की सृष्टि करता है– आका"ा की नीली उंचाइयों को नाप लेने का जज्बा अपने भीतर भरकर उड़ते पंछियों की एक कतार..... उस कतार से बिछुड़कर कहीं अकेली छूट गई नन्ही अबोध चिड़िया..... भटकती पगलाई..... कभी दूर तक पसरे विराट अकेलेपन से घबराती..... कभी गिद्धों– बाजों के आ झपटने की आ"ांका मात्र से सिहरती..... फिर भी कहीं आ"ावान.... .... पुनः 'अपनी कतार' में शामिल होने का स्वप्न लेती।''[2] पा"ाो की मां के घर से भाग जाने पर घरवाले पा"ाो पर अत्याचार करते रहे और स"ााय के कारण पा"ाो को जान से मारने की योजना बनाने लगे तो पा"ाो घर से भाग गई। घर से भागने के बाद वह न घर की रही न घाट की। पा"ाो की नानी झूठ न कहती थी, '' सभलकर रही एक बार पांव थिरका, जिंदगी धूल में मिटा देगा।''[3] डार से बिछुडो अर्थात सामाजिक वर्जनाओं और परिवार के कायदे कानूनों की गिरफ्त से छूटी नारी। डार यहां पर किसी स्नेह या संरक्षण का प्रतीक नहीं है। स्त्री का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। पा"ाो घर से भागकर शेखों की हवेली पहुंच गई, जहां पा"ाो का विवाह अंबरवाल के बूढ़े दीवान जी के साथ कर दिया गया। दीवान जी पा"ाो को एक नजर में अपने पिता की उम्र के लगे '' जी धक–धक करने लगा। जिनकी बैठक में रात भर टिकी थी वह तो किसी के बेटे से नही दीखते थे। पका पका चेहरा..... क्षण भर को लगा दिवान जी नहीं, शेखजी मुझसे यह पूछते हो। आँखें छलछला आई।''[4] पा"ाो का जीवन इस अनमेल विवाह के कारण बरबाद हा गया। प्राणों का मोह उसे कहाँ ले आया, ये उसने कभी सोचा न था। शीघ्र ही माँ बनने का सुख मिला पर पति की मृत्यु का गहरा आघात सहना पड़ा। अमृतराय के अनुसार– ''किसी को लांछित करने में समाज को रस आता है और लांछन की पात्र सुन्दर विधवा हो तो क्या पूछना। हमारे समाज में लांछन सदाव्रत खुला रहता है।''[5] बरकत दिवान ने पा"ाो को घड भर मोहरों में बेच दिया और इसी तरह कभी द्रोपदी और कभी नवेली की भूमिका निभाते रहने को बाध्य थी। पा"ाो जिन हाथों में पडो वही उसकी दुर्गति होती रही– ''गागर उठाकर नीचे बहा दी तो जान पड़ा, मैं भी चरखड़ी पर चढ़ी लज हूँ। कभी इस गागर, कभी उस गागर।''[6] इनसे छूटी तो फिरंगी खींचकर ले गये। पा"ाो अपनी तकदीर पर रोते हुये प्रारब्ध के रंग देख रही थी। वहीं कचहरी में उसका भाई उसे ले जाता है और वह अपनी मां और बेटे से मिल पाती है। माँ शेखजी से बोली– ''शेखजी मां जिन्दा से कहें दिवानों के लाडल को लाए। बेटी के वीर को बुलाएँ, आज उन्हीं के पैरों का सदका, बिछुड़ी बिटिया हमारी डार में आन मिली।''[7]

'पा"ाो नाम अपने आप में सारगर्भित है, पा"ा अर्थात फन्दा, उलझन का प्रतीक है और उसी तरह पा"ाो एक पालतू जानवर की भांति समाज द्वारा प्रताड़ित होती है और अपने साथ हो रही ज्यादतियों के खिलाफ उठ नहीं पाती। जिसके हाथ में उसकी नकेल होती है, वह उसी के पीछे चलना ही अपना कर्तव्य मानती है। पा"ाो मे परिस्थितियों को बदलने की सामर्थ्य नहीं थी। वह पूर्णतया पुरुष की दया पर निर्भर थी। जुल्म के खिलाफ विद्रोह करने की ताकत उसमें नहीं थी। बचपन से ही उसने पुरुष का आततायी रूप देखा था और उससे वह डरती ही रही। अपनी डार से बिछुड़ी एक लडकी के लिये हर ठौर–ठिकाना त्रासद ही बना रहा। सोबती ने विधवा समस्या, बंधनों में जकड़ी नारी और घर से बेघर होने की समस्या का ताना बाना ऐसा रचा है जिसमें उसकी दयनीयता, सहन"ाीलता, मर्मान्तक पीडा के द"ान होते है।

मित्रों मरजानी (मित्रो)

मित्रों मरजानी कृष्णा सोबती का सबसे चर्चित उपन्यास है। इसमें पंजाब के ग्रामीण परिवे"ा में रहने में सयुक्त परिवर की प्यार–मुहब्बत, झगड़े–फसाद, रोना–हँसना आदि के यथार्थ चित्रण के साथ ही एक बेबाक नारी मित्रों का चित्रण किया गया है। कृष्णा सोबती ने मित्रो के माध्यम से अपनी नारी को दो विलक्षण वि"ाष्टताएँ दी हैं– ''परम्परागत रूढ़ नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह और सनातन मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था।''[8] मित्रो अपने अधिकार को याचक या योद्धा के रूप में नहीं मांगती वरन् अपने आत्मबल को संचित करती हैं। मित्रों माँस–मज्जा से बनी एक ऐसी नारी है जिसमें स्नह भी है और ममता भी, माँ बनने की हौंस भी है और एक अविरल बहती वासना सरिता भी। मित्रों गुरूदास और धनवंती की मंझली बहू है। वह सरदारी लाल की पत्नी है आर दिखने में भी बहुत सुन्दर है। रंग से भूरी, काजल लगाई आंखों वाली सदैव अपने पति का सामना करन को तैयार रहती है और पति द्वारा पीटे जाने पर उसे काले पानी भिजवाने की बात करती है। मित्रों को यौन सुख की है जो उसे अपने पति से नहीं मिल पाता, इस कारण वह अपनी जिठानी, देवरानी के दाम्पत्य सुख से ईर्ष्या करती है। बिना लाग लपेट के अपनी इच्छा व्यक्त करती है– ''जिठानी, तुम्हारे देवर सा बगलोल कोई और दूजा न होगा। न दुख सुख, न प्रीति–प्यार, न जलन–प्यास बस.... .... आये दिन धौल–धप्पा.....लानत सलामत। ..... देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। .....बहुत हुआ हफ्ते– पखवारे..... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है इतनी प्यास कि मछली सी तड़पती हूँ।''[9] डा. छाया ने मित्रों की इस समस्या पर लिखा है– ''मित्रों मरजानी का कथानक एडजेस्टमेंट की समस्या पर आधारित है और यह एडजेस्टमेंट कामतृप्ति का है।''[10] मित्रों की माँ वे"या थी, वह अपनी बेटी की प्यास को पहचानती है और अपनी बेटी के लिये अपने प्रेमी को तैयार करती है। जब मित्रों देखती है कि उसकी माँ उसके पति से संबंध बनाना चाहती है तो उसे जलन होती है। पहले तो वह डर जाती है फिर तड़पकर चीखते हुए बोली –''तू सिद्ध भैरों की चेली अब अपनी खाली कड़ाही मे मेरी और भेरे खसम की मछली तलेगी ? सो न होगा, बीबो कहे देती हूँ।''[11] ऐसा

सोच कर उसकी अपने पति की प्रति निष्ठा जाग्रत होती है और वह अनैतिकता की तरफ से नैतिकता की ओर पहला कदम बढाती है– 'फिर तीर की सी छलांग मार ओसरे से देहरी कुलाची और माँ को ठेलते – ठेलते सरदारीलाल वाली बैठक की कुंडी चढ़ा ली।''[12]

मित्रों न रविन्द्र की ओस जैसी नारी है, न शरद या जैनेन्द्र की विद्रोहिनी गुत्थी। इसे न आदर्श का मोह है, न समाज का भय और न ईश्वर का। इसके लिये किसी भी विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है।

सूरजमुखी अंधेरे के (रत्ती)

इस उपन्यास की मुख्य पात्र रत्ती के साथ किसी अजनबी ने शैशवकाल में बलात्कार किया था। इस घटना ने रत्ती के जीवन को कड़वाहट से भर दिया। लड़के–लड़कियाँ भी उस पर व्यंग्य बाण करते हैं और लोग उसे देखकर कुछ न कुछ कहते रहते हैं, जिससे रत्ती ने अपने आपको लोगों से अलग कर लिया। ''रत्ती ने बेबसी से रेलिंग पर माथा झुका लिया। इस लड़की को, इस लड़की को एकबार भी समूची औरत बनने क्यों नहीं दिया? क्यों ....?''[13] उसकी सहेलियॉ और दोस्त समय–समय पर उसके जीवन की कड़वी घटना को दोहराते रहते हैं जिससे वह उनसे झगड़ा करती है, मारपीट करती है और कहती हैं–'' मुझे हमेशा लाल स्टार मिलते ह। मैं अपनी किताबें–कापियाँ सफाई से रखती हूँ। किसी से चीज नहीं मांगती। मैं अच्छी लड़की कैसे नहीं।''[14] उपेक्षा और कड़वी बातों ने रत्ती को सभी से अलग कर दिया है। खान अंकल का लड़का असद रत्ती को अच्छा लगता है किन्तु उसकी असमय मृत्यु ने रत्ती के स्वभाव को और अधिक कटु बना दिया है। रत्ती के संबंध वीरेश, जगतधर, भानुराव, केशी, राजन, रंजन और ओमो से रहे हैं। तभी तो वे रत्ती को कहते है– ''पहने हुये कपड़ों के सिवाय तुम्हारे पास कोई गरमाहट नही।''[15] इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– सूरजमुखी अंधेरे के सम्भोगीय कोटि में आता है जिसका अपना अन्दाज है और इस कोटि के उपन्यासों में यह नया भी है। इसके बारे में कहा गया है कि आधुनिकता के धरातल पर मनोविज्ञान की गूढ़ पहेलियों का बड़ी सादगी से उपन्यास में आंका गया है और इसके साथ ही शिल्प के पुराने सॉचे को तोड़ा गया है। कौन सी गूढ़ मनोविज्ञान की पहेलियों को आंका गया है ?''[16] अन्त में रत्ती दिवाकर के प्रति सम्पूर्णता से समर्पित होती है। दिवाकर उसे शापमुक्त करता है और रत्ती क अन्दर की औरत से साक्षात्कार करता है। रत्ती स्वयं कहती है– मैं जुड़े हुए को नहीं तोड़ूँगी। विभाजन नहीं करूंगी। मेरी देह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर।...........'' आओ दिवाकर, अपने और तुम्हारे विरुद्ध मैं अपने से ज्यादा तुम्हें ही चाहती हूँ।''[17] रत्ती दिवाकर के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है क्यों कि विवाह यौन संबंधों के लिये प्रमाण–पत्र मात्र न होकर ढेर सारे कर्तव्यों, दायित्वों का गंभीर दायित्व है। विवाह संस्था की पवित्रता को वह भंग नहीं करती क्यों कि मानवीय मूल्यों के प्रति उसकी अगाध आस्था है। राजेन्द्र यादव के अनुसार– ''इस उपन्यास में कृष्णा जी की नारी एक खतरनाक दिशा की ओर मुड़ती दिखाई देती है। 'डार से बिछुड़ी में आदमी ने औरत को एक चीज की तरह इस्तेमाल किया था, किन्तु यहा औरत आदमी को एक दूसरी दृष्टि से इस्तेमाल करती है। बहुत बचपन में किसी ने स्त्री के साथ बुरा काम किया था और उस अनुभव ने जैसे उसके भीतर की सारी कोमलता, सपनों, कैशोर्य और नारी सुलभ भावनाओं को कुचलकर रख दिया था। वह जड़ और शिलाभूत यानि फ्रिजिड हो गयी।''[18]

जिन्दगीनामा (शाहनी, राबयॉ)

जिन्दगीनामा में विभाजन के पूर्व पंजाब की धड़कती जिन्दगी है। इसमें जिन्दगी के सुख–दुख, मानवीय संबंधों और व्यवहारों की असंख्य परतें हैं। ''इसमें न कोई नायक है और न खलनायक। सिर्फ लोग और लोग और लोग। जिन्दादिल। जांबाज। लोग जो हिन्दुस्तान की डयोढ़ी पंचनद पर जमे, सदियों गाजी मरदा के लश्करों से भिड़ते रहे ह। फिर भी फसलें उगाते रहे। जी लेने की सोंधी ललक पर जिन्दगियाँ लुटाते रहे।''[19] इसमें जिन्दगी से साक्षात्कार कराने के लिये मिटटी की सोंधी गंध है। दरियाओं की अठखेलियां करती लहरें हैं, लोक कथाएँ, लोक नृत्य और लोकगीत हैं, किस्से किवदंतियॉ और मुहावरे हैं। ग्रामीण स्त्री प्रेम के प्रति आसक्त होकर अपना सब कुछ त्याग देती है, ऐसे ही प्रमुख नारी पात्रों में शाहनी और राबयॉ हैं।

शाहनी

शाहनी शाहजी की पत्नी है। शाहनी एक घरेलू व धार्मिक स्वभाव की स्त्री है। वह गांव के सुख–दुख से बंधी है। शाहनी का रूप पविव्रता स्त्री का है। अपने पति से भिन्न उसकी कोई पहचान नहीं है। पति के व्यक्तित्व में ही अपनी पूर्णता समझने वाली स्त्री है। शाहनी बहुत इन्तजार के बार मां बनी। संतान की इच्छा का मुख्य कारण वंश को आगे बढाने से था। ''शाहनी रोने लगी। बार बार आंचल से ऑखें पाछने लगी। इस घर में रब का दिया सब कुछ है, पर मैं ही इम्तहान में खरी नहीं उतरी।''[20] शाहनी अपनी पूर्णता इसी में मानती है। राबयां की सुन्दरता, उसका शाहजी के प्रति आकर्षण एक बारगी उसे चौंका देता है लेकिन फिर स्वयं ही कह उठती ह– इस कन्या से कैसा बैर। अतिशयोक्ति न होगी अगर ये कहा जायें कि शाहनी एक सती स्त्री का आदर्श कर सामने आई है।

राबयॉ

राबयॉ का प्रेम सबसे अनोखा है। फतेह अली की छोटी पुत्री राबयॉ बचपन से ही शाहों की हवेली में आती रहती थी। वह लावण्ययुक्त, अनुपम और सुरीली आवाज की मालकिन थी। शाह जी उसकी सुरीली आवाज की प्रशंसा करते थे। अनजाने में ही वह शाह जी की तरफ आकर्षित हो गई किन्तु साथ ही वह अपनी स्थिति और नियति से भी परिचित थी। वह कभी वारिस शाह के तो कभी बुल्लेशाह के गीत गाती थी। जब आलिये ने उसकी शादी के लिये वर ढूढ़ा तो उसने पाक साफ आवाज में शाह जी से कहा मुझे कहीं नहीं जाना। राबयॉ ने कदम उठाया और शाहजी की पारी पर सिर झुकाते हुये कहा कि– ''शाहजी मैंने आपको दिल में ऐसे धार लिया हैं जैसे भगत मुरीद अपने सांई को धार लेते है।''[21] राबयॉ का प्रेम पारलौकिक प्रेम को छू गया था। उसने जीवन भर शाह जी को गांव वालों के रक्षक और

अन्नदाता के रूप में देखा है। अब शाहजी का स्थान उसके जीवन में ई"वरीय रूप में बदल गया था।

जिन्दगीनामा में अन्य नारी पात्रों के रूप में चाची मेहरी, सजद बीबी बेगम बीबी, रसूली, गोमा ओर भोली इत्यादि आते है। सभी पात्र अपनी मिट्टी में रचे बसे ग्रामीण परिवे"ा की संस्कृति को साकार करते है।

दिलोदानिश (महक बानो, कुटुम्ब प्यारी)

मध्ययुग के सामन्ती जीवन से संबंधित उपन्यास है दिलोदानि"ा। वकील कृपानाराण, उनकी पत्नी कुटम्ब तथा उनकी प्रेमिका महक बानो के इर्द गिर्द उपन्यास की कथा घूमती है। पुरुष कुछ भी करे, समाज उसके कुछ नहीं कहता, जबकि समाज के बंधन, मर्यादाएँ स्त्री जीवन को बांधे रखती हैं। वकील साहब दोनों संबंधों को पूरी दानि"ामंदी से निभा रहे थे। इसमें नारी पात्रां के रूप में महक बानो, कुटुम्ब प्यारी, धुन्ना, नसीब बानो, बउआजी और मासूमा हैं।

महक बानो

महक दिल्ली की म"ाहूर नाचने वाली नसीम बानो की इकलौती बेटी है जो कि वकील कृपानारायण की रखैल व उनके दो बच्चों बदरु और मासूमा की माँ है। ताउम्र वह वकील साहब की परे"ाानियाँ बांटती रही, कभी कोई हक नहीं मांगा। वकील साहब ने उसकी नेकी और निष्कलंकता का फायदा उठाया। बेटी मासूमा की शादी में वकील साहब और उनकी पत्नी ने मिलकर उनसे मा होने का दर्जा भी छीनना चाहा तो उसे लगा कि अब उसे वकील साहब के दंभ आर अहकार के तले नहीं रहना है। उसने अपनी माँ के बे"ाकीमती जेवरों की वकील साहब से मांग की और कहा– ''हमारी माँ के जवर हमें आज शाम तक मिल जाने चाहिये, वकील साहब। आप अम्मी के वकील रहे, अब हम आपकी मुवक्किल की बेटी है जिनका उन पर पूरा हक हैं।''[22] वकील साहब से अपने गहन वापिस लेती है और जिस शादी में बेटी की माँ होने का दर्जा छीना जा रहा था, वहीं भरी सभा में कहती हैं– ''दस्तूर के मुताबिक हमें तो आज बरती रहना है बेटे। मासूमा की मॉ है हम।''[23] यहाँ वह अपने पर हुई ज्यादतियों के खिलाफ आवाज बुलन्द करती है और दानि"ामंदी के नोचे ठगे जाने का विरोध करते हुये अपने अधिकारों को प्राप्त करती है। अपनी ताकत और असलियत को समझकर उसे सन्तुष्टि मिलती है और कहती हैं – ''आज से पहल तो हम औरत ही नहीं थे। ओढनी थे, अंगिया थे, सलवार थे।..... जूती अपनी थी और पांव किसी ओर के सौंप रखे थे।''[24] कहाँ महक का पीला जर्द चेहरा और ऑखें उड़ी हुई लेकिन आज वह शादी की महफिल पूर्ण आत्मवि"वास और नई शख्सियत के साथ आई थी। लगता था वह जेवर पहनते ही उनका खानदानी स्वरूप उतर आया था, ऐसे जैसे दुनिया को पछाड़कर खडी हो गई हो।''[25]

कुटुम्ब प्यारी

कुटुम्ब प्यारी वकील कृपानारायण की ब्याहता पत्नी और उनके तीन बेटों की माँ है। संयुक्त परिवार की कर्ता धर्ता है और सामाजिक प्रतिष्ठा सम्पन्न कुलीन परिवार कुलवधू है। वह अन्याय का प्रतिकार करना चाहती है किन्तु वह पूरा दोष महक पर लगाती है जबकि असली गुनहगार वकील साहब को नजर अंदाज कर देती है। महक को वह अपनी जिन्दगी से निकाल फेंकना चाहती है– ''अधूरे से पल को कुटुम्ब के चेहरे पर कुछ खुला सा अक्स उभरा फिर दुगने जोर से तिड़कने लगा कमबख्त इस डाह से आप ही हमें छुटकारा नहीं दिलवा रहे। न"तर पर न"तर लगाये जाते है, जीना हराम कर दिया। हरदम हमारे साथ दूसरी का साया चला करता है। हम पागल हुये रहते हैं।''[26] कुटुम्ब कभी जेवरों के बहाने और कभी बच्चों के बहाने से महक को नीचा दिखने की कोि"ा"ा में लगी रहती है और उसके इन कामों पर वकील साहब भो कुछ नहीं कर पाते।

इस उपन्यास में लेखिका की सहानुभूति कुटुम्ब के स्थान पर महक बानो के साथ है। तभी तो पाठक के मन में महक बानो के प्रति संवेदन"ाीलता अंत तक बनी रहती है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही मुं"ाी जी के माध्यम से लेखिका की सोच प्रकट होती है– ''कहवा पी मुं"ाीजी नीचे उतरे तो साचा, ऊपर वाले के रंग हैं। कहां हवेली वाली ऐसी गुस्साई रहती है और कहां यह सिदक का ऐसा पानी पिये है कि जो देखे सलीके पर कुर्बान ही हो जाए।''[27] विवाहेत्तर संबंधों को जायज मानने वाले वकील साहब अंत तक आते आते अपने किये का फल भोगते है। महक और कुटुम्ब तो अपने अपने हिस्से की पीड़ा पहले ही भोगती आई है।

समय सरगम (आरण्या)

यह उपन्यास वृद्धों की दुनिया को देखने की एक नई सोच का परिणाम है। उपन्यास की मुख्य पात्र आरण्या के माध्यम से वृद्धों की जिजीविषा को समझा जा सकता है। इस उपन्यास के सभी वृद्ध पात्र मृत्यु की आ"ाका से भयभीत है, किंतु आरण्या इन सभी की तरह पल पल मृत्यु की कामना नहीं करती। आरण्या के माध्यम से सोबती ने यह दिखाने की कोि"ा"ा की है कि उम्र से आदमी बूढ़ा जरूर हो जाता है किंतु अगर वह चाहे तो मन से हमे"ाा जवान रह सकता है। महानगरों में वृद्धों के प्रति उपेक्षा का भाव उन्हें मानसिक रूप से पीड़ित करता आया है। परिवारजन अपने ही बुजुगा से सब कुछ लेना चाहते है किन्तु बदले में स्नेह, वि"वास नहीं देते। वृद्धों की इस पीड़ा के बारे में अरविन्द त्रिपाठी लिखते है कि ''ये नितान्त अकेले होकर बूढ़ी जिन्दगी को अपने ही जर्जर कंधों पर ढोने के लिये अभि"ाप्त हैं। इनकी समस्या भौतिक नहीं मानसिक है। यह मानसिक समस्या शहरी जीवन के उच्च वर्ग में अंधाधुंध दौड़ के कारण पैदा हुई है।''[28] बच्चे वृद्ध होते माता–पिता की तरफ से अनासक्त हो जाते है और उनकी दुनिया को समझ नहीं पाते। कृष्णा सोबती ने वृद्धों की दुनिया का, उनके मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण किया है।

आरण्या

उपन्यास की मुख्य नायिका आरण्या एक लेखिका हैं उसने अकेले जीवन जीने का स्वयं चुनाव किया है। उसकी जिन्दगी का आख्यान अस्तित्ववादी है, जिसमें स्त्रीवाद का समूचा नारी विम"ार्ा मौजूद है। आरण्या सत्तर वर्ष की है किंतु स्वयं को बूढ़ा नहीं समझती। उसकी चाल–ढाल, पहनावा, बोलचाल, हावभाव सब युवाओं जैसे हैं। वह किसी भी बात पर कि"ोरियों की

भाँति खिलखिला कर हंस पडती हैं। उसे काला रंग बेहद पसंद है वह ई"ाान से कहती है– ''क्यों नहीं । अपने गुलाबी काल में भी मुझे यही पसन्द था। इन दिनों पहनती हूँ ग्रे और सफेद। यही दोनों मेरे आंतरिक को घेरे रहते है।''[29] अकेलापन आरण्या को कभी खलता नहीं, संयुक्त परिवार के बारे में आरण्या के विचार कुछ अलग है– ''ई"ाान मुझे संयुक्त परिवार का अनुभव नहीं। दूर पास से जो इसकी आवाजें सुनी, वह सुखकर नहीं थी। इतना जानती हूँ कि परिवार की सुव्यवस्थित अस्मिता और गरिमा का मूल्य उन्हें भी चुकाना होता है। जिनका खाता दुबला हो। ..... हाँ। अगर कहूँ कि मैं अपनी खुद की निकटता म, सोहबत में कभी उदास नहीं होती तो ज्यादा सही होगा।''[30] किंतु वही आरण्या जब ई"ाान से मिलती है तो वह भी अकेले रहन और मरने से डरने लगती है। पुरुष हो या स्त्री एक साथी का साथ सभी को चाहिये। तभी तो ई"ाान आरण्या से कहते है– ''आरण्या हम दोनों जानते है कि हम, हम दोनों में से न कोई सुखी है और न दुखी। हम दोनों ही अपने सुखों ओर दुखों से बाहर है। इसलिये कि अब हम किन्ही सुखों की प्रतीक्षा नहीं कर रहे। तुमने एक दिन हंसी हंसी में कहा था कि सुख अब आत्मिक अनुभूति नहीं है। अब यह किस्सा आर्थिक क्षमता का है। पैसा है तो किन्ही भी साधनों की शांपिग मुमकिन है। हीरे, जवाहरात, फार्म हाउस, बैंक–बैलेंस, जो कुछ भी मिल सकता है वह सब कुछ प्राप्त हो सकता है। अब साधन ही सुख है क्या!''[31] अगर आरण्या अकेले ही रहना चाहती तो ई"ाान द्वारा रखे गये प्रस्ताव को नहीं मानती। अरविन्द त्रिपाठी के अनुसार– ''सोबती ने बड़ी चतुराई ओर कौ"ाल से उपन्यास के ताने बाने को बुना है। उस मकड़ी की तरफ जो दीवार पर लग कर जाला तो बेहतरीन बुनती हैं, पर बुनते वह अंत में निकलने का रास्ता भूल जाती है। फलतः उसका बुना जाला ही उसके लिये जंजाल हो जाता है।''[32] आरण्या और ई"ाान उम्र के आखिरी पड़ाव में इकटठे रहते है जहाँ उनके मन एक दूसरे के बहुत करीब है। वे अपने दुनिया में मस्त हैं। आरण्या और ई"ाान का व्यक्तित्व वृद्धों को एक नई नजर से देखने के लिये बाध्य करता है और द"ार्ाता है कि प्रेम किसी वि"ोष उम्र का मोहताज नहीं है।

निष्कर्ष

जीवन में यथार्थ को गहराई से पहचानकर, उसे संवेदना के स्तर पर जीकर कलात्मक अन्विति प्रदान करने में सफल लेखिका कृष्णा सोबती ने हिन्दी साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बनाई हैं। अपने भाव–विचार, जीवन मूल्य और दृष्टिकोण को बेहिचक प्रस्तुत कर साहित्य में काफी आलोचनओं का भी सामना उन्होने किया। उन्होंने स्त्री से जुड़े अनगिनत सवालों को अपने कथा साहित्य में उठाया है। स्त्री की अस्मिता और मुक्ति का सवाल उनकी मुख्य रचनात्मक चिंता रही है। स्त्री को अलग अलग परिस्थितियों म रखकर स्वाभाविक रूप से चित्रण किया गया है। कृष्णा सोबती ने समकालीन जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों से जोड़कर नारी के मानसिक और बौद्धिक परिणामों को पहचानने की कोि"ा"ा की है। उनकी रचनाओं में नारी की स्वचेतना का क्रमिक विकास परिलक्षित होता हैं। उन्होंने नारी के विविध रूपों–पत्नी, प्रेमिका, सपत्नी, वे"या, विधवा, माता, वृद्धा आदि का सफलतापूर्वक अंकन किया है।

संदर्भ सूची

1. उद्धरत : डा. ब्रिजिट पालः कृष्णा सोबती व्यक्तित्व एवं साहित्य , पृ.19
2. रोहिणीः एक नजर कृष्णा सोबती पर, पृ.58
3. कृष्णा सोबतीः डार से बिछुड़ी, कलेवर पृष्ठ
4. कृष्णा सोबतीः डार से बिछुड़ी, पृ.44–45
5. अमृतरायः मेरी प्रिय कहानियॉ, पृ.101
6. कृष्णा सोबतीः डार से बिछुड़ी, पृ.83
7. कृष्णा सोबतीः डार से बिछुड़ी, पृ.124
8. रोहिणी एक नजर कृष्णा सोबती पर, पृ.33
9. कृष्णा सोबतीः मित्रों मरजानी, पृ.17–19
10. डा. छाया मोहरीरः हिन्दी लघु उपन्यासों के संदर्भ में निर्मल वर्मा के उपन्यास पृ.123
11. कृष्णा सोबती : मित्रों मरजानी, पृ.94
12. कृष्णा सोबती : मित्रों मरजानी, पृ.94
13. कृष्णा सोबती : सूरजमुखी अंधेरे के, पृ.8
14. कृष्णा सोबती : सूरजमुखी अंधेरे के , पृ.44
15. कृष्णा सोबती : सूरजमुखी अंधरे के , पृ.71
16. इन्द्रनाथ मदानः आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ. 110
17. कृष्णा सोबती :सूरजमुखी अंधेरे के, पृ.134
18. राजेन्द्र यादव : औरों के बहाने, पृ.43–45
19. कृष्णा सोबती :जिन्दगीनामा,कवर पृष्ठ
20. कृष्णा सोबती :जिन्दगीनामा,पृ.29
21. कृष्णा सोबती :जिन्दगीनामा, पृ.387
22. कृष्णा सोबती :दिलोदानि"ा पृ.204
23. कृष्णा सोबती :दिलोदानि"ा पृ.221
24. कृष्णा सोबती :दिलोदानि"ा पृ.209
25. कृष्णा सोबती :दिलोदानि"ा पृ.220
26. कृष्णा सोबती :दिलोदानि"ा पृ.41
27. कृष्णा सोबती :दिलोदानि"ा पृ.12
28. संपादक राजेन्द्र यादव, हॅस (पत्रिका) जुलाई 2000, पृ.85
29. कृष्णा सोबती :समय सरगम पृ.14
30. कृष्णा सोबती :समय सरगम पृ.64–65
31. कृष्णा सोबती :समय सरगम पृ.133–134
32. संपादक राजेन्द्र यादव, हॅस (पत्रिका) जुलाई 2000, पृ.86